भारत और जलवायु परिवर्तन : काश आचरण शब्दों से अधिक मुखर होता

India and Climate Change: If Actions Could Speak Louder Than Words

नरसिम्हा राव

Narasimha Rao
December 6, 2010

जैसे ही जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं का अगला दौर कानकुन, मैक्सिको में शुरू होगा, भारत सरकार अपने आपको केंद्रीय मंच पर पाएगी. भारत के पर्यावरण मंत्री ने आगे बढ़कर कहा है कि उत्सर्जन में कटौती के अंतर्राष्ट्रीय परामर्श विश्लेषण (आईसीए) नाम से प्रचलित प्रयासों की निगरानी के लिए और प्रौद्योगिकी अंतरण के एक तंत्र के रूप में भारत एक ढाँचा प्रस्तुत करना चाहेगा. एक साल पहले कॉपनहेगन में भारत सरकार ने वायदा किया था कि वह 2020 तक सकल देशी उत्पाद की कार्बन सघनता की (ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन प्रति डॉलर) कटौती 2005 के स्तर से 20 से 25 प्रतिशत तक करेगा. इसके बाद अब यह भारत सरकार का अगला बयान है. विकसित देशों की वचनबद्धता के अभाव में उत्सर्जन में कटौती का भारत सरकार का यह संकल्प एक सक्रिय कदम तो है ही और साथ ही जोखिम भरा भी है. इससे विकसित देशों के स्थान पर भावी उत्सर्जन की अपेक्षाएँ स्वयं भारत की ओर मुड़ गई हैं कि भारत उस स्तर तक उत्सर्जन की बेसलाइन और पारदर्शिता का निर्वाह करेगा,जो उसके लिए निभाना न तो संभव है और न ही उसे निभाते रहना चाहिए.

कॉपनहेगन के समझौते ने अंतर्राष्ट्रीय जलवायु की राजनीति में एक ऐसा मील का पत्थर चिह्नित कर दिया है, जो कड़वा और मीठा दोनों ही है. पहली बार 125 देशों के राष्ट्राध्यक्ष सिद्धांत रूप में सहमत हो गए हैं कि ग्लोबल वार्मिंग को दो डिग्री सैल्सियम के भीतर बनाए रखा जाए ताकि जलवायु परिवर्तन में खतरनाक मानवीय हस्तक्षेप को रोका जा सके. लेकिन जिन्होंने उम्मीद की थी कि बड़े उत्सर्जक, विशेषकर अमरीका और चीन उत्सर्जन में कटौती करने के लिए वचनबद्ध होंगे,वे निराश हो गए, हालांकि इसकी पहले से ही आशंका भी थी.
यह निराशाजनक भी है कि उन देशों से भी समान अपेक्षाएँ की जा रही हैं जिनका जलवायु परिवर्तन के मामले में योगदान बिल्कुल अलग किस्म का है. अमरीकी प्रतिनिधि ने ज़ोर देकर कहा है कि अमरीका ग्रीन हाउस के गैस (जीएचजी) उत्सर्जन में कटौती से संबंधित कार्यक्रम में तब तक भाग नहीं लेगा जब तक कि तेज़ी से उदीयमान अर्थव्यवस्थाएँ भी इसके लिए गंभीरता से वचनबद्ध न हों. यद्यपि उसका निशाना चीन पर था, लेकिन भारत पर भी इससे दबाव बढ़ गया है.

बीस उत्सर्जकों में जो देश शामिल हैं, वे हैं जापान,रूस,ब्राज़ील और दक्षिण अफ्रीका. भारत इन देशों से बाहर है. दुनिया के तीसरे सबसे गरीब राष्ट्रसमूहों में भारत भी शामिल है और इस समूह में गरीब लोगों की संख्या भारत में सबसे ज़्यादा है. यद्यपि वैश्विक जीएचएस उत्सर्जन में भारत का योगदान 5 प्रतिशत है और भारत का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन इस समूह में सबसे कम है. इस क्रम में विश्व में भारत का स्थान 149 वाँ है और यह स्थान ज़िम्बाब्वे से भी नीचे है. भारत की जनसंख्या चीन के बराबर होने जा रही है और ग्रीन हाउस के

वार्षिक उत्सर्जन में भारत का योगदान चीन के मुकाबले एक चौथाई के बराबर है. सन् 2000 के बाद से भारत की अर्थव्यवस्था का सकल देशी उत्पाद अच्छे से अच्छे समय में भी औसतन 7 प्रतिशत तक ही रहा, जबकि चीन का सकल देशी उत्पाद 10 प्रतिशत रहा.

इस समय भारत की अर्थव्यवस्था की गति अपेक्षाकृत धीमी है और कार्बन सघनता भी कम हो रही है.ऊर्जा संबंधी आवश्यकताओं के लिए भारत की अर्थव्यवस्था कोयले पर 54 प्रतिशत और बिजली पर 70 प्रतिशत निर्भर रहने के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था की सकल देशी उत्पाद की कार्बन सघनता चीन से आधी है और अमरीका के बराबर है. इसके कई कारक हैं, श्रम-सघन अर्थव्यवस्था और पिछले दो दशकों में सेवानीत विकास की कम ऊर्जा सघनता.

ऊर्जा बचत में निवेश के कारण ग्रीन हाउस की गैस (जीएचजी) उत्सर्जन की बढ़ोतरी में कटौती से कुछ दुष्प्रभाव भी हुए हैं.पिछले दशक में बिजली की क्षमता में जो 50 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई थी, वह हाइड्रो,पवन और सौर ऊर्जा के क्षेत्र में हुई थी, जिनका (जीएचजी)) उत्सर्जन बहुत कम होता है. इस समय गैर-हाइड्रो पुनर्नवीकरण के योग्य ऊर्जा क्षमता 160 गीगावाट (जी डब्ल्यू) के स्थापित आधार का 10 प्रतिशत है, जो यूरोपीय संघ और चीन के बराबर है और अमरीका के शेयर के दुगुने से भी अधिक है.

सकल घरेलू उत्पाद की कार्बन सघनता में गिरावट की प्रवृत्ति कितनी मज़बूत है? अल्पावधि में तो ये संकेत इसी दिशा में ही दिखाई पड़ते हैं, लेकिन दीर्घावधि में इनमें अनिश्चितता हो सकती है.अर्थव्यवस्था की कार्बन सघनता सिर्फ़ इस कारण बढ़ सकती है क्योंकि अर्थव्यवस्था के विनिर्माण जैसे कुछ भागों में अधिक ऊर्जा की ज़रूरत पड़ती है और इनमें बढ़ोतरी भी अन्य भागों की तुलना में अधिक तेज़ी से होती है. उदाहरण के लिए विनिर्माण क्षेत्र, जिसमें सेवा उद्योग की तुलना में कई गुना अधिक ऊर्जा लगती है, का सकल देशी उत्पाद में 28 प्रतिशत योगदान है जबकि सेवा क्षेत्र का योगदान 56 प्रतिशत है. यदि विनिर्माण क्षेत्र सेवा क्षेत्र का स्थान ले लेता है और विकास का प्रमुख संचालक बन जाता है तो ऊर्जा सघनता में बढ़ोतरी हो सकती है

आर्थिक नीतियों से उत्पादकता बढ़ती है और मानवीय विकास से कुछ हद तक इस प्रकार का संरचनात्मक परिवर्तन होता है. कृषि के मशीनीकरण में वृद्धि इसका एक उदाहरण है. 40 प्रतिशत भारतीय घरों में, जहाँ बिजली की सुविधा नहीं है, यदि बिजली पहुँच जाती है और साथ ही उसका उद्देश्य बदलकर ग्रामीण विकास हो जाता है तो सार्वजनिक सेवाओं का विस्तार हो सकता है, आजीविका और निर्माण के नए रास्ते खुल सकते हैं. नीति संबंधी ये सभी परिवर्तन आर्थिक विकास की दृष्टि से आवश्यक हैं, लेकिन कुल मिलाकर इनसे कार्बन की सघनता में बढ़ोतरी हो सकती है.

वर्ष 2020 तक वर्तमान आपूर्ति की वृद्धि दर पर निर्मित 100-120 जी डब्ल्यू की क्षमता में से 58 जी डब्ल्यू की कोयला-परियोजनाएँ 11 वीं योजना (2007-2012) तक पूरी होने वाली हैं. दूसरी ओर राष्ट्रीय सरकार ने वर्ष 2020 तक अनेक परमाणु और सौर क्षमता की विशाल योजनाएँ बनाई हैं और प्रत्येक योजना 20 जी डब्ल्यू की होगी और बाद में ये योजनाएँ राष्ट्रीय सौर मिशन में शामिल हो जाएँगी. सत्रह राज्य बिजली विनियामकों ने पुनर्नवीयन करने योग्य खरीद संबंधी बाध्यताओं को स्थापित कर लिया है.

जैसे ही वास्तविक कार्य शुरू होता है तभी पता लगेगा कि गैर-कोयला प्रौद्योगिकियाँ किस हद तक भारत की भावी क्षमता संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करेंगी. इसलिए संभावना इस बात की है कि पवन और खास तौर

पर सौर ऊर्जा के लिए बड़े पैमाने पर निवेश होने से उच्च पूँजीगत लागत के कारण और जीवाश्म ईंधन के स्रोतों की तुलना में कम उपयोग के कारण बिजली का खर्च बढ़ जाएगा. भारत में बड़े पैमाने पर पवन और सौर फ़ार्मों पर दुगुने से भी अधिक लागत आती है और कोयले से उत्पादित बिजली की तुलना में यह लागत क्रमशः पाँच गुना अधिक होती है. भारत में अमरीका और यूरोपीय संघ की तुलना में पवन की औसत गति कम होती है, जिसके कारण पवन टर्बाइन की उत्पादकता कम हो जाती है. परमाणु और हाइड्रो प्रौद्योगिकियाँ भी भारत में अपनी प्रच्छन्न आर्थिक,सामाजिक और पर्यावरण संबंधी लागत के कारण विवादास्पद रही हैं. बिजली के विनियामकों के लिए यह एक राजनैतिक चुनौती होगी कि वे इस बढ़ी हुई लागत की वसूली तीन सौ मिलियन और बढ़ती आबादी से कैसे करेंगे जो इस बिजली की खपत करते हैं और जिनकी आमदनी $2 डॉलर प्रतिदिन है.

जलवायु परिवर्तन में कटौती के बारे में भारत की वचनबद्धता का सही आकलन उसके द्वारा इस संबंध में की गई विशेष कार्रवाई और विशेष पहल से होगा, न कि अर्थव्यवस्था की प्रवृत्तियों से. निश्चय ही यदि हम हाल ही में की गई नीति संबंधी पहल को नज़दीक से देखें तो पता चलता है कि भारत ने उत्सर्जन की वृद्धि में कटौती के लिए कुछ अवसरों का लाभ उठाना शुरू भी कर दिया है, जिनसे विकास कार्यों में मदद मिलेगी.

वर्ष 2008 में सरकार ने जलवायु परिवर्तन की राष्ट्रीय कार्य योजना (एनएपीसीसी) शुरू की थी, जिसमें आठ राष्ट्रीय मिशन भी शामिल थे, जो विभिन्न अनुसंधान के क्षेत्रों पर केंद्रित थे. ये क्षेत्र हैं, जलवायु परिवर्तन,स्थायी कृषि,राष्ट्रीय सौर मिशन और ऊर्जा दक्षता में वृद्धि का राष्ट्रीय मिशन (एनएमईईई). ऊर्जा दक्षता ब्यूरो ने पहले ही साधनों के मानक लागू कर दिए हैं, औद्योगिक प्रबंधकों को प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया है और बड़े उद्योगों के लिए नवीन ऊर्जा दक्षता व्यापार योजना बना ली है. पिछले दो दशकों में विश्व में सर्वाधिक औद्योगिक बिजली के मूल्यों के कारण और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता और बाज़ार पर आधारित ऊर्जा मूल्यों के कारण सीमेंट और इस्पात जैसे ऊर्जा सघन क्षेत्रों ने 1990 से प्रतिवर्ष अपनी ऊर्जा की सघनता में कटौती शुरू कर दी है. यदि यह नई पहल व्यावसायिक आधार पर भी चल निकलती है तो भारत अन्य देशों को लिए भी उदाहरण बन सकता है.

कार्बन की खपत में कटौती करने का एक और अवसर है, जिसका अभी तक लाभ नहीं उठाया जा सका है और वह है ऊर्जा की आपूर्ति को अधिक दक्षता से विस्तारित करना. इन अवसरों और इनकी लागत के परिमाण का हिसाब लगाना आसान नहीं है, क्योंकि यह सब सरकारी सुधारों पर निर्भर करती हैं. नीति संबंधी उपलब्धियों का आकलन आम तौर पर निर्मित क्षमता पर निर्भर करता है, न कि वास्तव में दी गई सेवाओं पर. जैसे ही बिजली संयंत्र बनते हैं, उनसे होने वाले लाभ खराब रख-रखाव और कमज़ोर डिलीवरी प्रणाली के कारण घट जाते हैं; गाँवों में ग्रिड तो बन जाते हैं, लेकिन बिजली की आपूर्ति बहुत कम हो पाती है. दक्षता बढ़ाने और कार्बन की कटौती की पहल के उदाहरण हैं: सिंचाई की सुविधा में सुधार और दक्षता, बिजली और पानी के वितरण की हानियों में कमी और वर्तमान बिजली संयंत्रों के उपयोग में सुधार.

अन्य कायाकल्प करने में सक्षम परिवर्तन हैं: सार्वजनिक यातायात में वृद्धि और हाल ही में घोषित खाना पकाने वाले स्टोव कार्यक्रम में सुधार. इन दोनों कार्यक्रमों से न केवल जीएचजी उत्सर्जन में कटौती होती है, बल्कि इनसे वायु की गुणवत्ता में सुधार होता है और गरीब लोगों के जीवन-स्तर में सुधार होता है.

भारत में ऊर्जा का चित्र जटिल है और इसमें बहुत-सी ऐसी प्रवृत्तियाँ भी शामिल हैं, जो बहुविध तो हैं ही, उनका पहले से अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता और ये प्रवृत्तियाँ परस्पर विरोधी भी हैं यदि कॉपनहेगन में किए गए वायदे के अनुरूप सकल देशी उत्पाद की वृद्धि की कार्बन सघनता में कटौती होती है तो भी उसके परिणामों से भारत सरकार के निर्णय का औचित्य सिद्ध नहीं होगा. अभी तो कम-कार्बन की वृद्धि वाले विभिन्न अवसरों की संभाव्यता और लागत का पता लगाने के लिए बहुत अधिक अनुसंधान करना होगा. कानकुन में भारत सरकार को हाल ही की अपनी पहल का प्रदर्शन करना होगा ताकि विकसित देशों को भी तकनीकी और वित्तीय सहायता के अपने पुराने वायदों को पूरा करने की प्रेरणा मिल सके. भारत सरकार के पारदर्शिता लाने के प्रयास प्रशंसनीय हैं, लेकिन उन्हें उपयुक्त रूप में समन्वित करना होगा. सभी देशों को जलवायु परिवर्तन रोकने के और अधिक प्रयास करने होंगे. लेकिन यदि कुल उत्सर्जन के शेयर और जीवन-स्तर के संदर्भ को देखें तो सारा दारोमदार अमरीका, चीन और यूरोपीय संघ पर है. कानकुन में गेंद भारत के पाले में नहीं है.

नरसिम्हा राव स्टैनफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के पर्यावरण और संसाधन संबंधी ऐमिट अंतर्शिक्षालयीन कार्यक्रम (ईपीआई-आर) में पीएचडी के छात्र हैं. वे पहले बेंगलोर स्थित भारतीय प्रबंधन संस्थान में सार्वजनिक नीति केंद्र के अभ्यागत संकाय (विज़िटिंग फ़ैकल्टी) थे.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@hotmail.com>